# तित्थयर

जैन भवन

वर्ष ५ अंक ७ : नवम्बर १९८१

बनारसी साड़ी

इण्डियन सिल्क हाउस

कॉलेज स्ट्रीट मार्केट • कलकत्ता-१२

# Prakash Trading Company

12 INDIA EXCHANGE PLACE
CALCUTTA-700001

Gram: PEARLMOON

Telephone: 22-4110 22-3323

# The Bikaner Woollen Mills

Manufacturer and Exporter of Superior Quality
Woollen Yarn/Carpet Yarn and Superior
Quality Handknotted Carpets

*Office and Sales Office :*

**BIKANER WOOLLEN MILLS**
Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phones : Off. 3204
Res. 3356

*Main Office*

**4 Mir Bhor Ghat Street**
**Calcutta-700007**
Phone : 33-5969

*Branch Office*

**The Bikaner Woollen Mills**
**Srinath Katra : Bhadhoi**
Phone : 378

# तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र
वर्ष ५ : अंक ७
नवम्बर १९८१

□

संपादन
गणेश ललवानी
राजकुमारी बेगानी

□

आजीवन : एक सौ एक
वार्षिक शुल्क : दस रुपये
प्रस्तुत अंक : एक रुपया

□

प्रकाशक
जैन भवन
पी - २५ कलाकार स्ट्रीट
कलकत्ता-७००००७

□

मुद्रक
सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स
२०५ रवीन्द्र सरणी

सूची

प्राचीन सराक संस्कृति की
सुवर्णभूमि पाकविड़रा १९७
उन्मेष २०६
त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र २०७
जैन दर्शन में कर्मवाद [२] २१४
जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या २२३

अनेक लोग मानसिक व मानता पूरा करने के लिए पशु-बलि भी देते हैं। अहिंसा धर्म के साधक पुरुष महान् तीर्थंकर की आंखों के सम्मुख ही रक्त से मिट्टी भींग जाती है। …महाकाल भैरव के छद्मवेश में महान् तीर्थंकर के नेत्र-कोणों में शायद अश्रु आ जाते होंगे। किन्तु नेत्रों के उस जल का हिसाब किसी के पास नहीं है। पृ० १६६

चित्र : श्री अमल त्रिवेदी

# प्राचीन सराक संस्कृति की सुवर्णभूमि पाकविड़रा

श्री युधिष्ठिर माजी

पाकविड़रा। प्राचीन सराक संस्कृति की सुवर्णभूमि। यहीं है पुरूलिया जिला की साढ़े सात फुट लम्बी महान् तीर्थंकर मूर्त्ति।

बागदा से तीन मील दक्षिण में पाकविड़रा काफी बड़ा गाँव है। ग्रामवासियों द्वारा जाना गया कि पाक का अर्थ है पक्षी और बिड़रा का अर्थ है ताड़न करना। हो सकता है इस गाँव के शान्त जंगलमय स्थानों में किसी समय पक्षियों के प्रचुर नीड़ रहे होंगे, घोंसले रहे होंगे। परवर्त्ती काल में बहेलियों के दल उन्हें तंग करते रहे होंगे। यहाँ से कुछ मील की दूरी पर है बुधपुर। सुना है यहाँ मेले के समय प्रचुर मात्रा में श्यामा पक्षियों का क्रय-विक्रय होता था।

पाकविड़रा के इसी प्राकृतिक लीला क्षेत्र में रचित हुआ था अतीत युगीन सराक संस्कृति का एक गौरवमय अध्याय। यहाँ की धरती पर उस समय के चार सराक मन्दिरों का सन्धान मिला है। एक तो बिल्कुल टूट गया है। बाकी तीन मन्दिरों की ऊपरी पत्तों को उतार कर अलंकरणों को नष्ट कर दिया गया है। महाकाल के काले हाथों के घर्षण ने मन्दिरों के अलंकरणों को क्षय कर दिया है ऐसा सोचने का कोई कारण ही नहीं मिलता। बल्कि पूर्वकल्पित भाव से ही मन्दिरों के अमूल्य मूर्त्ति शिल्प के निदर्शनों की ऊपरी पत्तों को उतार फेंका गया है। इसके निदर्शन मन्दिर के सर्वांग में मिलते हैं और मिलते हैं जमीन के नीचे से निकाली हुई अलंकरण युक्त मन्दिर की हजार-हजार शिलाखण्डों में।

अभी भी मन्दिरों के नीचे की ओर किसी-किसी स्थान में कुछ-कुछ अलंकरण रह गए हैं। अलंकरणों के इन रीतियों के साथ बराकर मन्दिरों के अलंकरणों से विस्मयकारी सादृश्य है। यहाँ तक कि पाकविड़रा के मन्दिरों के अक्षत रूप कैसे थे यह हम जान सकते हैं बराकर मन्दिरों के मध्य ही। प्रायः एक ही मॉडल में एक ही भास्कर्य शिल्प रीति में सब मन्दिर निर्मित हुए थे। पाकविड़रा के मन्दिर धर्मान्ध मनुष्यों के काले हाथों से नहीं बच सके। किन्तु बराकर के मन्दिर शिवलिंग का कवच धारण कर अक्षत रह सके हैं। बराकर मन्दिर के गर्भ में शिवलिंग स्थापित कर देने के कारण अब इन्हें

शिव मन्दिर कहकर ही प्रचार किया जाता है। पश्चिम बंग सरकार के टूरिस्ट ब्यूरो के विज्ञापन में लिखा गया है—'माइथन तुम्हें पुकार रहा है। यात्रा करते समय बराकर के कोलाहलहीन शान्तिधाम, कल्याणेश्वरी और विख्यात् शिव मन्दिर आर्त-हृदयों की क्लान्ति को समाप्त कर देगा।'

किन्तु बराकर मन्दिरों को विख्यात् शिव मन्दिर कहकर प्रचार करने से न केवल सत्य को ही झुठलाया जाता है अपितु, विदेशी भ्रमणकारियों को विभ्रान्त भी बनाया जाता है। टूरिस्ट ब्यूरो जैसी दायित्वशील संस्था के द्वारा इस प्रकार का प्रचार शोभा नहीं पाता।

पाकबिड़रा में सराक मन्दिरों का मात्र ढाँचा खड़ा है। उनकी कंकाल-सी देह आज रिक्त शून्य दयनीय बनी हुई है। इसके रक्त, माँस, चर्म को खण्ड-विखण्ड कर यहाँ की मिट्टी में छुपा लिया गया है। मन्दिर के मंगल कलश इधर-उधर लुढ़क रहे हैं। इन मंगल कलशों के ऊपर आम्र-पल्लव युक्त नारियल रखा हुआ है। शिल्पकला की दृष्टि से ये अतुलनीय हैं। अनुमान किया जा सकता है कि इन्हें मन्दिर के शिखर एवं मन्दिर की प्राचीरों पर किसी-किसी स्थान में रखने की रीति थी। इसके अतिरिक्त बहु संख्यक मंगल-कलश यहाँ संरक्षित थे।

कुछ दिन पूर्व सामान्य खनन कार्य प्रारम्भ कर प्रचुर जैन मूर्त्तियों का उद्धार किया गया है। किन्तु अब भी यहाँ मिट्टी के नीचे और भी सराक शिल्पियों द्वारा निर्मित शत-शत मूर्त्तियाँ मुक्ति की आशा में दिन गिन रही हैं। न जाने कब किस युग में कोई राजपुत्र सुवर्णयष्ठि हाथ में लेकर अपने पुरूषार्थ से मिट्टी हटाकर वज्रखाने का द्वार खोलेगा? न जाने कब तक ये सब प्राचीन निदर्शन इस प्रकार गहरी नींद में सोए रहेंगे?

ग्रामवासी भी इन सब निदर्शनों को जमीन खोदकर निकालना नहीं चाहते। उनकी धारणा है इन्हें बाहर निकालने से ही सरकारी लोक या कोई प्रभावशाली प्रतिष्ठान इन्हें लेकर चला जाएगा।

एक स्थान पर एक सुन्दर खूब बड़ी मूर्त्ति के कुछ अंश दिखायी देते हैं। कुछ घण्टे के परिश्रम से ही यह मिट्टी से बाहर निकाली जा सकती है। किन्तु यह सब करने वाले लोग ही नहीं हैं। राष्ट्रीय शिल्प कला अबाध रूप से नष्ट हो रही है, उसकी रक्षा करने वाला कोई नहीं है। प्राचीन सम्पदा का इस प्रकार अपव्यय किसी देश में होता है मैंने कभी नहीं सुना।

यहाँ की मूल मूर्त्ति महान् तीर्थंकर महाकाल भैरव के नाम से रूपान्तरित

हो गयी है। वैशाख मास में भैरव नाथ की पूजा होती है। ज्येष्ठ मास में तेरह-चौदह दिन तक उत्सव होता है। छोटे-मोटे गाजन मेले भी होते रहते हैं। पहले गाजन सन्यासीगण पृष्ठ के चमड़े में छेदकर चड़क घुमाते थे। वर्त्तमान में शायद चड़क पूजा नहीं होती फिर भी खाड़ा सन्यासियों की शोभा यात्रा अनुष्ठित होती है। इसके अतिरिक्त अनेक लोग मानसिक व मानता पूरा करने के लिए पशु-बलि भी देते हैं। अहिंसा धर्म के साधक पुरुष महान् तीर्थंकर की आँखों के सम्मुख ही रक्त से मिट्टी भींग जाती है। बकरियाँ और उनके शिशुओं की आर्त चीत्कार और ताजे रक्त-स्रोत से जिस वीभत्स परिवेश की सृष्टि होती है उससे महाकाल भैरव के छद्मवेश में महान् तीर्थंकर के नेत्र कोणों में शायद अश्रु आ जाते होंगे। किन्तु नेत्रों के उस जल का हिसाब किसी के पास नहीं है।

पाकविड़रा की धरती से निकाली गईकई सो सराक जैन मूर्त्तियाँ टूटी-फूटी अवस्था में चारों ओर बिखरी पड़ी हैं। मूल प्रतिमा भैरवनाथ के लिए एक घर तैयार किया गया है। इस घर में इस मूल मूर्त्ति के अतिरिक्त पच्चीस-तीस सराक जैन मूर्त्तियाँ रखी हुई हैं। मूर्त्तियों में जिस प्रकार जैन तीर्थंकरों की मूर्त्तियाँ हैं ठीक उसी प्रकार हैं यक्ष-यक्षिणी व जैन शासन के देव-देवियों की मूर्त्तियाँ। शासन देव-देवियों की मूर्त्ति के ऊपर की ओर है ध्यान-मग्न महान् तीर्थंकरों की मूर्त्तियाँ। इन सब अमूल्य शिल्प-कला का यथार्थ परिचय देना मेरी क्षुद्र-बुद्धि से सम्भव नहीं हो सकता फिर भी मैंने जैसा देखा वैसा ही वर्णन कर दिया है।

एक नारी मूर्त्ति और एक पुरुष मूर्त्ति है, उन दोनों के बाएँ हाथ में शिशु सन्तान है। नारी के पैरों के नीचे घट है और पुरुष के पैरों के नीचे प्याला है। ऊपर की ओर चैत्यवृक्ष का प्रतिरूप है। सबके ऊपर है ध्यानमग्न तीर्थंकर। इन्हें अनेकों ने तीर्थंकरों का माता-पिता कहकर अभिहित किया है। कोई-कोई इन्हें शीर्ष स्थित तीर्थंकरों के यक्ष-यक्षिणी कहते हैं। खजुराहो, देवगढ़ आदि स्थानों में भी अनुरूप मूर्त्तियाँ पायी गयी हैं।

दूसरी एक देवी मूर्त्ति अकेली है। सम्भवतः यह जैन अम्बिका की मूर्त्ति है। नीचे के शिशु को देखकर ऐसा ही लगता है। एक शिलाखण्ड में लीलायित सर्पों के मुख में नारी और पुरुष हैं। बायीं ओर नारी है और दाहिनी ओर पुरुष। सम्भवतः ये धरणेन्द्र पद्मावती हैं। मध्य में तीर्थंकर पार्श्वनाथ हैं। मूर्त्ति का ऊपरी अंश टूट गया है। नीचे की ओर दाहिनी

तरफ दो स्त्रियाँ हाथ जोड़कर बैठी हुई हैं। सबसे नीचे दोनों ओर दो सिंह की मूर्त्तियाँ हैं।

मन्दिर की अलंकरणयुक्त पत्तं, जो आगे ही तोड़कर फेंक दिया गया और मिट्टी के नीचे दबा दिया गया था, के कुछ अंश वर्त्तमान में जमीन से निकाले गए हैं। टूटे-फूटे वही सब अलंकरण जो कि भास्कर्य शिल्पकला के अतुलनीय निदर्शन हैं जहाँ-तहाँ पड़े हैं। एक स्थान के शिलापट पर मयूर की पीठ पर अष्टभुजा देवी की मूर्त्ति है। मूल दोनों हाथों में कोई अस्त्र नहीं है बाकी हाथों में नाना प्रकार के अस्त्र हैं ऐसा लगता है। मूर्त्ति खूब छोटी है। देवी मूर्त्ति के दाहिनी ओर सिंह का मुख दिखायी देता है। नीचे चार-चार कर आठ बैठी मूर्त्तियाँ हैं एवं मध्य में है कमल या धर्मचक्र। क्या यह अष्टभुजा मूर्त्ति सतरहवें तीर्थंकर कुंथुनाथ की अच्युता नामक शासन देवी है? वह जो भी हो शिल्पकला की दृष्टि से मन को बहुत आकृष्ट करती है।

विभिन्न आकार की जैन तीर्थंकरों की बहुत-सी मूर्त्तियाँ पाकविड़रा में हैं। कहीं वे पञ्चफणा सर्प छत्र के नीचे भाव गम्भीर परिवेश में खड़ी हुई हैं तो कहीं लीलायित सर्पों के मध्य आजानुलम्बित होकर। कहीं तीर्थंकर की मूर्त्ति के सन्निकट खड़ी हैं यक्षिणियाँ या चँवर हाथ में लिए ललित भंगिमामय सुन्दर नारियाँ। एक शिलाखण्ड पर सिंह की पीठ पर चढ़ी नारी मूर्त्ति है।

इन सभी देवी व नारी मूर्त्तियों में अलंकरण प्रायः एक ही प्रकार के हैं। सुन्दर परिपुष्ट वक्ष, भारी नितम्ब, कमर है सूक्ष्म और नाभि देश गम्भीर, नासिका उन्नत है। ओष्ठ पतले, बंकिम भंगिमामय। मूर्त्तियों के हाथ-पाँव गले में अलंकार है। कमर से नितम्ब पर्यन्त फैली हुई मेखला है। कवरी बन्धन शिथिल है। सिर पर छोटा मुकुट है।

पाकविड़रा में एक ही शिलापट्ट पर दो-दो तीर्थंकरों की मूर्त्तियाँ भी काफी हैं। इसके अतिरिक्त तीर्थंकर के दोनों ओर ६ या २४ तीर्थंकर की मूर्त्तियाँ हैं। ये सभी मूर्त्तियाँ ३ से ४ फुट तक लम्बी हैं। सभी प्रायः अक्षत हैं। ये सब कुछ महीनों पूर्व ही जमीन से निकाली गयी हैं। उनके सर्वांग में अभी भी मिट्टी की गन्ध है। अन्य एक विराट शिलापट्ट पर खुदा हुआ है २४ तीर्थंकर की मूर्त्तियाँ १४ पंक्ति में। कुल ३३६ तीर्थंकरों की मूर्त्तियाँ हैं इस एक फलक में। प्रत्येक मूर्त्ति प्रायः ४ इञ्च लम्बी है।

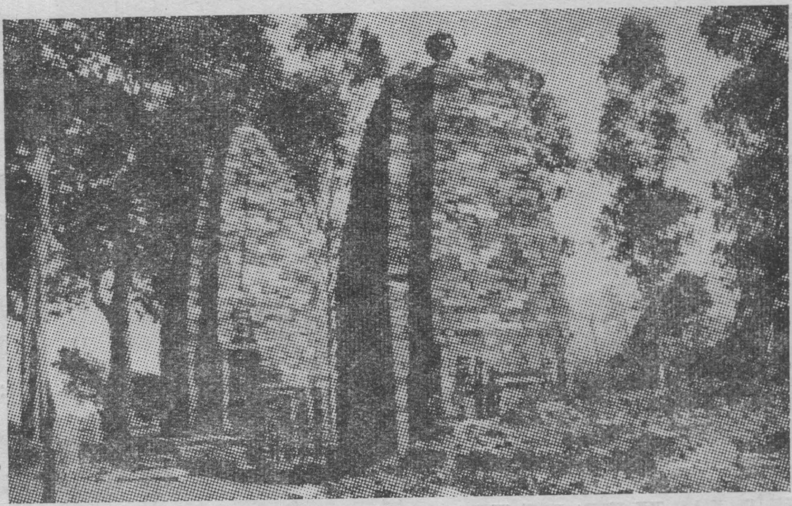

पाकविड़रा का विख्यात् सराक जैन मन्दिर
ऊपरी पत्तों को उतारकर अलंकार नष्ट किया गया है।

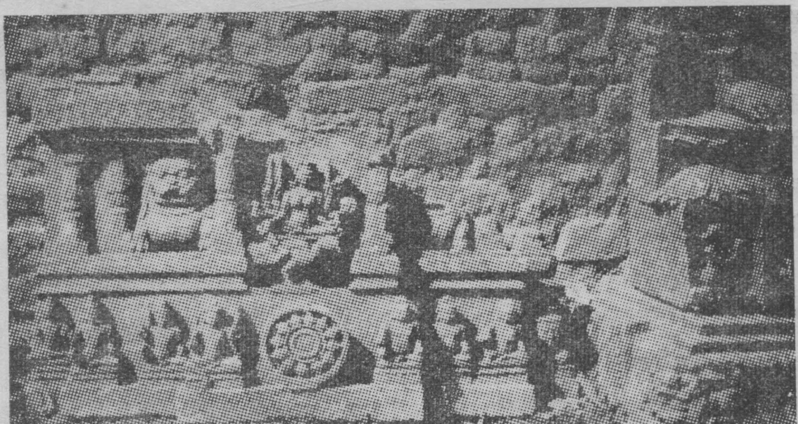

अलंकरण सहित ऊपरी पत्तों का सामान्य अंश जो कि भाष्कर्य
शिलपकला का अमूल्य निदर्शन हैं।

**चित्र : श्री अमल त्रिवेदी**

इस फलक का कुछ अंश टूट गया है। दूर से यह शिलालिपि-सा प्रतीत होता है।

पाकविड़रा में चार सराक मन्दिरों के मॉडल मिले हैं। प्रथम मॉडल गाढ़े बादामी पत्थर पर खुदा हुआ है। मॉडल के ऊपर छत्र की भाँति जो चक्र था लगता है टूट गया है। इसमें ३८ विभाजन हैं। चारों ओर चार जैन तीर्थंकरों की मूर्त्तियाँ हैं। मध्य के चारों ओर अपूर्व अलंकरण हैं। इसी मॉडल में पाड़ा नामक गाँव में पत्थरों का मन्दिर निर्मित किया गया था। पाड़ा मन्दिर के अलंकरणों के साथ इस मिनि मन्दिर की अलंकरण प्रणाली में सादृश्य है। इसके नीचे की ओर चौकोर होने पर भी ऊपरी की ओर प्रायः गोलाकार है। इस मिनि मन्दिर की लम्बाई प्रायः चार फुट है।

दूसरा मिनि मंदिर वर्गाकार बनाया गया है। यह भी बादामी पत्थर पर उत्कीर्ण है। यह प्रायः तीन फुट लम्बा है। मन्दिर की प्राचीरों पर सुन्दर अलंकरण और चारों ओर चार तीर्थंकरों की मूर्त्ति दण्डायमान अवस्था में उत्कीर्ण है। इस मिनि मन्दिर के मॉडल में पुरूलिया में कोई जैन मन्दिर है या नहीं मैं नहीं जानता। फिर भी इस मन्दिर के मॉडल में बने हुए कुछ हरि मन्दिर और तुलसी मंच मेरे दृष्टिगत हुए हैं। इसके अतिरिक्त पुरूलिया के लोक उत्सव टुसू पूजा में टुसू के लिए जो कागज का घर बनाया जाता है उस पर इस मिनि मन्दिर के शिल्प की छाप पड़ी है ऐसा मुझे लगता है। बहुत-सी जैन शिल्प-कलाओं ने परवर्त्ती काल में इस अंचल के लोक शिल्प को समृद्ध किया। सम्भवतः यह भी उसका ही एक निदर्शन है।

तृतीय एवं चतुर्थ मिनि मन्दिर कुछ दिन पूर्व ही जमीन से निकाले गए हैं। तृतीय मिनि मन्दिर के मॉडल में ही तैयार हुआ था पाकविड़रा एवं बराकर का मन्दिर। इन दो स्थानों के मन्दिर के साथ इसका आकार गत पूर्ण सामञ्जस्य है। किन्तु अलंकरण रीति में अधिक साम्य नहीं है। चतुर्थ मिनि मन्दिर के शिल्प कौशल पर तो मुग्ध होना ही पड़ता है।

यहाँ की मूल प्रतिमा काले रंग के खूब सख्त पाषाण से अपूर्व कुशलता-पूर्वक निर्मित की गयी है। ऐसा लगता है जैसे जीवंत तीर्थंकर ध्यान गम्भीर भाव में प्रशान्त दृष्टि से देख रहे हैं। यह मूर्त्ति भी अखण्डित नहीं है। जाँघ प्रदेश द्विखण्डित हो गया है। बाद में वह किसी समय सुन्दरतया जोड़ा गया है। पाकविड़रा की धरती पर एक सामान्य से छोटे घर के क्षुद्र परिसर

में बन्दी होकर रहे हैं विश्व की अहिंसा के प्रतीक महान् तीर्थंकर, उनके ललाट पर सिन्दूर लगा है, पावों पर फूल और बेल-पत्र चढ़ा है। यहाँ प्रत्येक मूर्त्ति बेल-पत्र और फूल से पूजी जाती है। यहाँ तक कि ये छोटे मिनि मन्दिर भी इस पूजा से वंचित नहीं है।

आज पाकबिड़रा के सराक संस्कृति के इस पुण्यक्षेत्र में उपस्थित होते ही मुझे जो एक बात स्मरण हो रही है वह है कि यहाँ की धरती में इतनी जैन मूर्त्तियाँ कहाँ से आईं ? ये सब मूर्त्तियाँ क्या मन्दिरों की प्राचीरों पर सजायी हुई थीं ? मुझे तो ऐसा नहीं लगता। मन्दिर की प्राचीरों पर जो सब मूर्त्तियाँ और अलंकरण थे उनका धरातल अर्थात् शिलापट्ट पतला था और वे सभी अधिकांशतः टूट गए हैं। इसके अतिरिक्त मन्दिर की दीवालों पर बहुत-सी सराक जैन मूर्त्तियाँ संयोजित थीं ऐसा नहीं सोचा जा सकता। पूर्व ही कह आया हूँ बराकर के मन्दिरों की प्राचीरों के अलंकरणों से यहाँ के मन्दिरों के अलंकरण मिलते-जुलते हैं। बराकर के मन्दिर प्रायः अक्षत हैं। वहाँ के मन्दिरों के गर्भदेश में जैन मूर्त्तियाँ अवश्य ही थीं किन्तु मन्दिर की प्राचीरों पर मूर्त्तियों का सन्धान नहीं मिलता है। जैन मन्दिर के जो मॉडल मिले हैं उनमें भी चार से अधिक जैन तीर्थंकरों की मूर्त्तियाँ नहीं मिलती। अतः पाकबिड़रा के मन्दिरों की प्राचीरों पर शत-शत जैन मूर्त्तियाँ संयोजित थीं ऐसा नहीं माना जा सकता।

इन्हीं सब कारणों से मेरा मन कहता है पाकबिड़रा में भास्कर्य शिल्पकला और मूर्त्ति-निर्माण की एक कर्मशाला थी। इस कर्मशाला में दक्ष सराक शिल्पीगण मूर्त्ति निर्माण करते थे। वे यहाँ जैन, बौद्ध एवं हिन्दू इन तीनों ही महान् धर्म की मूर्त्तियाँ निर्मित करते थे। इसी कारण से इस अंचल में कुछ-कुछ बौद्ध और हिन्दू देवी-देवताओं की मूर्त्तियाँ भी पाई जाती हैं। यहाँ से बौद्ध मूर्त्तियाँ विदेशों में भी निर्यात की जाती थीं। चीन, जापान, इण्डोनेशिया, वर्मा, थाइलेण्ड, जावा आदि देशों का इस अंचल से सम्बन्ध था। सम्भवतः ताम्रलिप्त से ये सब मूल्यवान शिल्पकला विदेशों में भेजी जाती थीं। ताम्रलिप्त से पाटलीपुत्र पर्यन्त एक रास्ता भी बनाया गया था। इस प्रकार के मूर्त्ति-निर्माण की कर्मशाला पाकबिड़रा के अतिरिक्त छड़रा एवं देउलघाटा में भी थी ऐसा हम सोच सकते हैं और इसी कारण से ही बहुत-सी एक ही किस्म की अक्षत मूर्त्तियाँ पायी जाती हैं। कौन कह सकता है कि पाकबिड़रा की धरती के नीचे एक पूरा अजायबघर ही छिपा हुआ हो।

अब प्रश्न यह उठता है कि सराक शिल्पीगण आए कहाँ से ? क्या वे यहाँ

के आदि पुरुष थे ? इस प्रश्न का उत्तर देना बहुत कठिन है। इस प्रसंग का कोई प्रमाण इतिहास में है कि नहीं मैं नहीं जानता। फिर भी श्रावक सम्प्रदाय के इस क्षेत्र में आने के पश्चात् यहाँ आश्रम सभ्यता का निर्माण करने के लिए कुछ भाष्कर्य शिल्पियों की आवश्यकता निश्चित ही थी। अतः इन सब शिल्पियों को दूर देश से लाया गया था।

इस प्रसंग का कोई इतिहास हमारे पास न होने पर भी सराक शिल्पियों को जिन्हें गुजरात के सुदूर प्रदेशों से यहाँ लाया गया था उस सम्बन्ध में कुछ किम्बदन्तियाँ हैं। मिस्टर जी. कूपलैण्ड किम्बदन्ती के आकार में ही जो मूल्यवान तथ्य दिये हैं उससे हम जान सकते हैं—"....There is a tradition that they ( Saraks ) ordinarily came from Gujarat but in the former districts the popular belief is that they were brought thither as sculptors and masons for the construction of stone temples and houses the remains of which are still visible on the bank of Barakara."

यह किम्बदन्ती बराकर के मन्दिर प्रसंग में बोली जाने पर भी यदि उसमें कुछ ऐतिहासिक तथ्य है तो यह पाकविड़रा के मन्दिर प्रसंग के लिए भी प्रयुक्त होगी। क्योंकि उभयस्थल के मन्दिर निर्माण का कौशल प्रायः एक ही प्रकार का है। पुरूलिया के ये सब पुराकीर्त्ति के निदर्शन जो कि सराक शिल्पियों द्वारा तैयार हुए थे उस सत्य को स्वीकार कर मि० कूपलैण्ड लिखते हैं :

"...reference has already been made in an earlier chapter as the remnant of an archaic community (the Saraks) whose connection with the district must date back to the very earliest time."

केवल अतीत की ही कथा नहीं है वर्त्तमान पण्डित समाज भी अब इस सत्य को ही मानने के लिए बाध्य हुआ है। झाड़खण्ड के बुद्धिजीवी राधा गोविन्द माहात अपने "झाड़खण्डे धर्मान्तर अभियान ओ समाज संस्कार आन्दोलन" नामक एक प्रबन्ध में लिखते हैं—"जो कुछ हो, सराक जाति ने जैन धर्म ग्रहण किया और बहुत समय तक इस अंचल में धर्म की इस दीपशिखा को प्रज्ज्वलित रखा। इनके हाथों निर्मित जैन मन्दिर एवं मृप्रस्तर रचित जैन र्त्ति सहित विभिन्न देव-देवियों की मूर्त्तियाँ आज भी

बहुत जगह वर्त्तमान है। तत्कालीन निर्मित इनका भास्कर्य शिल्प इदानिंग युग के मनुष्य को भी आश्चर्य चकित कर डालती है कारीगरों की सूक्ष्म निपुणता देखकर।"[1]

कहानी किम्बदन्ती और मिस्टर कूपलैण्ड के मत में सराक शिल्पीगण बाहर से आए थे एवं श्रीयुत् राधा गोविन्द माहात महाशय के मत में सराक यहीं के थे, उन्होंने यहीं जैन धर्म ग्रहण किया। किन्तु कोई भी मनुष्य जैन धर्म ग्रहण करने से ही शिल्पी नहीं हो सकता। उसका प्रशिक्षण आवश्यक है। सराक शिल्पीगण इसी अंचल की पुराकीर्त्ति के सृष्टिकर्त्ता हैं इस विषय में तो कोई सन्देह नहीं है। किन्तु वे यहीं के आदिवासियों के एक अंश विशेष हैं, ऐसा सोचने का तो कोई कारण ही नहीं है। इस प्रसंग में मिस्टर कूपलैण्ड का मत ही ग्रहण योग्य है।

पुरूलिया की पुराकीर्त्ति के मध्य छिपा है पुरूलिया का इतिहास। आज पाकविड़रा की धरती के नीचे प्राचीन इतिहास के उपादान शत-शत सराक शिल्पकला नीरव होकर निभृत एकान्त में अश्रु विसर्जन कर रही हैं। इन्हें क्या हम मुक्त कर बाहर के प्रकाश में नहीं ला सकते? ऐतिहासिक तथ्यों को संग्रहित कर उन्हें ग्रन्थाकार में प्रकाशित करना जितना प्रयोजनीय है उतना ही प्रयोजनीय है इन सब अमूल्य शिल्पकलाओं को संग्रह कर संग्रहशाला में संरक्षित कर देना। पुरूलिया तथा पाकविड़रा के इधर-उधर छिटके-बिखरे इन सब पुराकीर्त्ति के निदर्शन को लेकर पुरूलिया में एक संग्रहशाला बनायी जा सकती है। पश्चिम बंग सरकार यदि इस ओर जरा भी ध्यान दे तो निश्चय ही पुरूलिया की प्राचीन सम्पदा इस अवक्षय के हाथों से बच सकती है। अतीत के पुरूलिया को गवेषकगण खोज सकेंगे इन्हीं सब प्राचीन शिल्पकला के मध्य ही।

[1] शिलालिपि, ५वाँ व ६ठा संकलन।

# उन्मेष

सुमन्त भद्र

तर्क, संशय के विकल्पों की
लहर
हो नियोजित और सुस्थिर वेग कर
जब बहे उर्ध्वान्त
निःश्रेयस दिशा में
जन्म लेती एक श्रद्धा—
मानवी, तन्वी, सुलेखा
धवल ऋत—चित् की
ऋतम्भर व्यञ्जना से
तृप्त कर देती
गहन अतृप्ति का उर
और जगकर आदमी
मादिर निशा से
उदयगिरि पर रश्मियों का
स्वर्ण अमल विहान लखता
क्षीर - सागर में नहायी
ग्रन्थियों के बन्ध मसृण
रोम - से खुलते
अवेदन चित्त का
लभता घनाश्रय !

# त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र

### श्री हेमचन्द्राचार्य

### [ पूर्वानुवृत्ति ]

मुनि को सुपात्र दान देने के फलस्वरूप धन श्रेष्ठी ने उत्तर-कुरुक्षेत्र में युगल रूप में जन्म ग्रहण किया। वहाँ सब समय सुखम आरा वर्त्तमान रहता है। वह स्थान सीता नदी के उत्तर तट पर जम्बू वन के पूर्व भाग में है। इन युगलियों की आयु तीन पल्योपम की एवं देह तीन कोश लम्बी होती है। उनकी पीठ में २५६ अस्थियाँ होती हैं। वे अल्प कषायी और ममता रहित होते हैं। तीन दिन में मात्र एकबार उनकी खाने की इच्छा होती है। आयु के शेष भाग में स्त्री युगल केवल एक बार गर्भ धारण करती है और उसके युगल ( एक पुत्र एक कन्या ) उत्पन्न होते हैं। सन्तान के उनचालीस दिवस का हो जाने पर माता-पिता की मृत्यु हो जाती है। वहाँ से वे देवलोक में जाकर उत्पन्न होते हैं। उत्तर कुरुक्षेत्र की मिट्टी स्वभावतः ही शर्करा की भाँति मीठी होती है, जल शरद्कालीन चन्द्रमा की भाँति निर्मल और भूमि रमणीय होती है। इस भूमि पर दस प्रकार के कल्पवृक्ष उत्पन्न होते हैं। ये कल्पवृक्ष बिना परिश्रम के युगलियों को उनकी प्रयोजनीय वस्तुएँ देते हैं।

मद्यांग नामक कल्प-वृक्ष उन्हें सुरा देता है भृगाक पात्रादि देता है, तुर्यांग विविध राग-रागिनी युक्त वाद्ययन्त्र देते हैं, दीप शिखांक और ज्योतिष्कांग अद्भुत आलोक देते हैं। चित्रांग नानाविध फूल और माल्य देते हैं, चित्ररस खाद्य देते हैं, मण्यांग अलंकारादि देते हैं, गेहाकार गृहरूप निवास स्थान देते हैं और अनग्न दिव्य-वस्त्र देते हैं। इन कल्पवृक्षों के अतिरिक्त अन्य कल्पवृक्ष भी होते हैं जो मनोवांछित वस्तु प्रदान करते हैं। वहाँ सब प्रकार की इच्छित वस्तुएँ मिलने के कारण धन श्रेष्ठी युगल जीवन में स्वर्ग-सा विषय सुख भोग करने लगे।

युगल आयु पूर्ण कर धन श्रेष्ठी पूर्व जन्म के सुपात्र दान के कारण सौधर्म देवलोक में जाकर देवता-रूप में जन्म-ग्रहण किया।

देवायु पूर्ण होने पर वहाँ से च्युत होकर वे पश्चिम महाविदेह क्षेत्र में गन्धिलावती विजय में वैताढ्य पर्वत के ऊपर गान्धार देश के गन्धसमृद्धि नगर में विद्याधर शिरोमणि शतबल राजा की चन्द्रकान्ता नामक पत्नी के

भंग से पुत्र रूप में उत्पन्न हुए। महाविक्रमशाली होने के कारण उनका नाम महाबल रखा गया। वैभव के मध्य लालित-पालित रक्षकों द्वारा सुरक्षित महाबल कुमार वृक्ष की भाँति वर्द्धित होने लगे। क्रमशः चन्द्र की भाँति समस्त कला से पूर्ण होकर वे महाभाग्यशाली समस्त लोक के लिए आनन्द-दायक बन गए। उचित समय पर माता-पिता ने साक्षात् विनयलक्ष्मी स्वरूप विनयवती के साथ उनका विवाह कर दिया। इन्होंने भी धीरे-धीरे कामदेव के तीक्ष्ण अस्त्र की भाँति कामनियों के वशीकरण रूप एवं रति के क्रीड़ा क्षेत्र के तुल्य यौवन को प्राप्त किया। उनके चरणों के पृष्ठ भाग कच्छप पृष्ठ की भाँति ऊँचे थे, पदतल समान थे। उनकी देह का मध्यभाग सिंह के मध्यभाग को भी तिरस्कृत करने वाला (अर्थात् क्षीण कटि) था। वक्ष देश था पर्वत शिलावत, दोनों स्कन्ध थे वृषभ स्कन्ध की भाँति सुन्दर और दोनों भुजाएँ शेष नाग के फण की भाँति सुशोभित थी। उनका ललाट देश अर्धउदित पूनमचन्द्र की भाँति अभिराम था। उनकी सौम्य आकृति मणि-मुक्ता-सी दन्त पंक्तियाँ एवं नाखून और सुवर्ण कान्तिमय देह मेरुलक्ष्मी को भी निन्दित कर रही थी।

एक दिन सुबुद्धि, पराक्रमी और तत्वज्ञ विद्याधरपति शतबल एकान्त में बैठे चिन्तन कर रहे थे यह शरीर तो स्वभावतः ही अपवित्र है। इस अपवित्रता को नित्य नूतन भाव से सजाकर और कितने दिनों तक ढककर रख सकेंगे? नाना भाव से नित्य यत्न करने पर भी यदि कभी कुछ अयत्न हो जाए तो दुष्ट पुरुष की भाँति शरीर विकृत हो जाता है। कफ, विष्ठा, मूत्रादि के देह से निर्गत होने पर मनुष्य उससे घृणा करता है किन्तु जब वह शरीर में रहता है तब उसकी ओर दृष्टि ही नहीं जाती। जीर्ण वृक्ष के कोटर में जिस प्रकार सर्प-वृश्चिक आदि क्रूर प्राणी निवास करते हैं उसी प्रकार इस शरीर में भी यन्त्रणादायी अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। शरत्कालीन मेघ की भाँति यह शरीर स्वभावतः ही नाशवान है, यौवन रूपी लक्ष्मी देखते-देखते ही विद्युत प्रभा की भाँति विलीन हो जाती है। आयु ध्वजा की तरह चंचल है। वैभव तरंग-सा तरल। भोग-सुख भुजंग की भाँति वक्र और संगम स्वप्न-सा मिथ्या है। शरीर स्थित आत्मा पिंजरबद्ध प्राणी की भाँति काम, क्रोध रूप अग्नि के ताप में दिवा-रात्रि दग्ध हो रहा है। कितना आश्चर्य! महादुःखदायी विषय को सुखदायी समझकर विष्ठा में उत्पन्न कीट-सा मनुष्य कभी वैराग्य प्राप्त नहीं करता। परिणामतः दुःखदायी विषय के स्वाद में आबद्ध होकर उसी तरह सिर पर खड़ी मृत्यु को नहीं देख पाता

जिस प्रकार अन्धा सम्मुख उपस्थित कुएँ को नहीं देख पाता। मधुर विषय के विष के प्रथम आक्रमण में आत्मा मूर्च्छित हो जाती है। अतः उसका मंगल किसमें है वह यह सोच नहीं पाती। चार पुरुषार्थ यद्यपि समान है फिर भी आत्मा पाप रूपी अर्थ और काम पुरुषार्थ में लीन हो जाती है। धर्म और मोक्ष पुरुषार्थ के लिए प्रयत्न नहीं करती। इस दुस्तर संसार समुद्र में जीव के लिए मनुष्य देह रूपी अमूल्य रत्न प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है। मनुष्य-शरीर प्राप्त होने पर भी भाग्योदय से ही अर्हत् भगवान और निर्ग्रन्थ सुसाधुओं का सान्निध्य मिल पाता है। यदि मनुष्य देह धारण करके भी हम इसका उत्तम फल ग्रहण नहीं करते हैं तब हमारी दशा उस नागरिक-सी हो जाती है जिनका शहर में रहते हुए भी सर्वस्व लूट जाता है। इसलिए अब मैं कवचधारी महाबल कुमार को राज्य-भार देकर आत्म-कल्याण में नियुक्त होता हूँ।

ऐसा चिन्तन कर राजा शतबल ने महाबल कुमार को बुलवाया और उस विनय सम्पन्न कुमार को राज्य-भार ग्रहण करने को कहा। महाबल कुमार ने पितृ आज्ञा शिरोधार्य कर ली, क्योंकि महान् आत्माएँ गुरूजनों की आज्ञा को अमान्य करने में भयभीत हो जाती हैं।

तब राजा शतबल ने महाबल कुमार को सिंहासन पर बैठाकर राज्याभिषिक्त कर स्व हाथों से मंगल तिलक अंकित किया। कुन्द-पुष्प से मंगल तिलक में नवीन राजा उदयाचल पर आरूढ़ चन्द्रमा की भाँति सुशोभित होने लगे। शरत्कालीन मेघ वृत गिरिराज जिस प्रकार देखने में सुन्दर लगता है वे भी हंसधवल पिता के श्वेतछत्र में उतने ही सुन्दर दिखायी दे रहे थे। उड़ते हुए हंस युगलों से मेघ-पंक्ति जिस प्रकार सुशोभित होती है उसी प्रकार दोनों ओर चामर वीजने के कारण वे शोभित हो रहे थे। चन्द्रोदय के समय समुद्र जिस प्रकार मन्द्रित होता है उसी प्रकार अभिषेक कालीन मन्त्र ध्वनि से आकाश भी मन्द्रित होने लगा। सामन्त और मन्त्रीगण ने महाबल कुमार को राजा शतबल का रूपान्तर मानकर अभिवादन किया और उनकी आज्ञा पालन की शपथ ली।

इस भाँति पुत्र को सिंहासन देकर राजा शतबल ने आचार्य के निकट जाकर स्वयं चारित्र रूप साम्राज्य को ग्रहण किया (अर्थात् प्रव्रजित हुए)। उन्होंने असार विषय का परित्याग कर सार रूप त्रिरत्न ( सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, सम्यक् चारित्र ) को धारण किया अर्थात् राजवैभव परित्याग कर

प्रव्रजित हुए। वे समभाव में अवस्थित रहने लगे। जीतेन्द्रिय बनकर क्रोध, मान, माया, लोभ को उसी प्रकार उखाड़ फेंकने लगे जिस प्रकार नदी का प्रवाह तट स्थित वृक्ष को उत्पाटित कर देता है। वे शक्तिशाली महात्मा मन को आत्म-स्वरूप में लीन कर शरीर और वाणी को नियमित कर दुःसह परिषह सहन करने लगे। मैत्री, करुणा, मध्यस्थ आदि भावनाओं में जिनकी ध्यान धारणा वर्द्धित हो गयी है वे शतबल राजर्षि महानन्द में इस प्रकार अवस्थान करने लगे जैसे वे मोक्षानन्द में अवस्थित हों। ध्यान और तपस्या निरत वे महात्मा आयु के अवसान होने पर लीलामात्र में ही स्वर्ग में देवता रूप में उत्पन्न हुए।

महाबल कुमार बलवान विद्याधरों की सहायता से इन्द्र की भाँति पृथ्वी का अखण्ड शासन करने लगे। हंस जिस प्रकार कमलिनीवन में आनन्द से क्रीड़ा करता है उसी प्रकार वे भी रमणियों के साथ पुष्पोद्यान में आनन्द क्रीड़ा करने लगे। उनकी राजधानी में नियमित संगीत की झंकार उठती जो कि वैताढ्य पर्वत पर प्रतिध्वनित होकर ऐसी लगती मानो गिरि कन्दराएँ उस संगीत का अभ्यास कर रही हैं। आगे-पीछे, दाएँ-बाएँ रमणियों से परिवृत वे साक्षात् शृंगार रस की भाँति सुशोभित होने लगे। स्वच्छन्द भाव से विषय क्रीड़ा में मग्न होकर उनके दिन-रात विषुवत् रेखा स्थित समभाव दिवा-रात्रि की भाँति व्यतीत होने लगी।

एक दिन सामन्त और मन्त्रियों से अलंकृत होकर महाबल कुमार मणि-स्तम्भ की भाँति सभास्थल में बैठे थे। अन्यान्य सभासद् भी अपने-अपने *स्थान पर अधिष्ठित थे। वे महाबल कुमार को एक दृष्टि से इस भाँति* देखने लगे जैसे योग साधना के लिए वे ध्यान करने जा रहे हों। स्वयंबुद्ध, संभिन्नमति, शतमति और महामति नामक चार मुख्यमंत्री भी वहाँ उपस्थित थे। इनमें स्वयंबुद्ध मन्त्री स्वामीभक्ति में अमृत सागरवत थे, बुद्धि में रोहणाचल पर्वत की भाँति और सम्यक् दृष्टि सम्पन्न थे। वे सोचने लगे— यह दुःख का विषय है कि हमारे विषयासक्त राजा को इन्द्रिय रूपी दुष्ट अश्व आकृष्ट कर लिए जा रहे हैं। मुझे धिक्कार है कि मैं इसकी उपेक्षा कर रहा हूँ। विषय के आनन्द में आसक्त हमारे प्रभु का जीवन व्यर्थ नष्ट हो रहा है देखकर जैसे अल्प जल में मीन दुःखी हो जाती है मैं भी उसी प्रकार दुःखित हूँ। यदि मेरे जैसा मन्त्री राजा को सद्मार्ग पर नहीं ले जाता है तब मुझमें और विदूषक मन्त्री के मध्य पार्थक्य ही क्या रहा? अतः उचित है राजा की विषयासक्ति का ह्रास कर उन्हें सत्पथ पर ले जाना। क्योंकि

राजागण जल प्रणाली की भाँति मंत्रीगण जिस पथ पर ले जाते हैं उसी पथ पर चलते हैं। जो स्वामी के व्यसन द्वारा स्वयं का निर्वाह करते हैं वे इस विचार से क्रुद्ध हो सकते हैं किन्तु मेरे लिए तो उचित है उन्हें सद्युक्ति देना। कारण मृग के भय से क्या हम खेत में बीज वपन करने से निरस्त रहेंगे ?

बुद्धिमानों के मध्य अग्रणी स्वयंबुद्ध मंत्री इस प्रकार चिन्तन कर करबद्ध होकर महाबल से बोले—"महाराज, यह संसार समुद्रवत् है। जिस प्रकार नदी के जल से समुद्र तृप्त नहीं होता, समुद्र जल से बड़वानल, जीवों से यमराज, ईंधन से अग्नि उसी प्रकार विषय सुख-भोग से आत्मा कभी तृप्त नहीं होती। नदी तट की छाया, दुष्टों की संगति, विष, विषय और सर्पादि प्राणियों का अधिक सान्निध्य सर्वथा दुःखदायी होता है। उपभोग के समय कामोपभोग सुखदायी लगते हैं किन्तु परिणाम में रसहीन ही होते हैं। खुजलाने से जिस प्रकार दाद बढ़ता जाता है उसी प्रकार कामोपभोग सेवन से असन्तोष ही बढ़ता है। कामदेव नरक का दूत है, व्यसन का सागर है, विपत्ति रूप लता का अंकुर है और पाप रूपी वृक्ष को वर्द्धन करने वाला है। कामदेव के मद में मतवाला मनुष्य सदाचार पूर्ण मार्ग से भ्रष्ट होकर भव-संसार रूप गह्वर में पतित होता है। चूहा जब घर में प्रवेश करता है तो स्थान-स्थान पर बिल बना देता है उसी प्रकार कामदेव भी जब शरीर में प्रवेश करता है तब अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष रूप पुरुषार्थ में स्थान-स्थान पर छिद्र कर देता है अर्थात् विनष्ट कर देता है।

"स्त्रियाँ विषाक्त लता की भाँति देखने से, स्पर्श करने से और उपभोग करने से व्यामोह सृष्टि करती हैं वे कालरूपी व्याध के जाल की भाँति हैं। इसीलिए मनुष्य रूप हरिण के लिए महा अनिष्टकारी है। जो विलास-व्यसन के मित्र हैं वे केवल भोजन पान और स्त्री विलास के मित्र हैं। इसलिए वे लोग कभी भी अपने प्रभु के परलोक की हित चिन्ता नहीं करते। उन्हीं स्वार्थ-परायणों का दल चाटुकार और लम्पट होते हैं। वे अपने प्रभु को स्त्री कथा, नाच-गान और विनोद की कथाएँ सुनाकर खुश करते हैं। बदरी वृक्ष के साथ रहकर जिस प्रकार कदली वृक्ष अच्छा फल नहीं देता उसी प्रकार कुसंगतिरत कुलीन व्यक्ति का भी कभी कल्याण नहीं होता। इसलिए हे कुलीन स्वामी, आप प्रसन्न होकर विचार करें। आप स्वयं भी ज्ञानी हैं। आप इसलिए मोह में पतित न हों। आसक्ति का परिहार कर अपने चित्त को धर्म में संलग्न करिए। छायाहीन वृक्ष, जलहीन सरोवर, सुगन्धहीन फूल, दन्तहीन हाथी, लावण्यहीन रूप, मन्त्रीहीन राजा, विग्रहीन चैत्य,

चन्द्रहीन रात्रि, चरित्रहीन साधु, शस्त्रहीन सैन्य, नेत्रहीन मुख जिस प्रकार शोभा नहीं देता उसी प्रकार धर्महीन पुरुष भी शोभा नहीं देता। चक्रवर्ती राजा भी यदि अधर्मी होता है तो वह वहाँ जन्म लेता है जहाँ सड़े हुए अनाज का मूल्य राज्य सम्पदा-सा होता है। महाकुल में उत्पन्न होकर जो धर्माचरण नहीं करता वह अन्य जन्म में कुत्ते की भाँति अन्य का उच्छिष्ठ भक्षण कर ही जीवन धारण करता है। ब्राह्मण भी यदि धर्महीन हो तो वह भी पाप संचय कर बिलाव की भाँति कुक्रियाकारी होकर म्लेच्छ योनि में जन्म लेता है। भव्य जीव भी यदि धर्महीन होता है तो बिलाव, सर्प, सिंह, बाघ, गिद्ध आदि तिर्यंक योनि में कितने ही जन्म व्यतीत कर नरक जाते हैं। वहाँ वैर के द्वारा क्रुद्ध व्यक्तियों की भाँति परमाधार्मिक देवताओं के द्वारा नाना रूप पीड़ित होते हैं। शीशा जिस प्रकार अग्नि में गल जाता है उसी प्रकार अनेक व्यसनों की अग्नि में अधार्मिक व्यक्ति का शरीर भी गल जाता है। इसलिए ऐसे अधार्मिक व्यक्तियों को धिक्कार है! धर्म परम बन्धु की भाँति सुख देता है और नौका की भाँति विपद्रूप नदी पार करने में सहायक बनता है। जो धर्म उपार्जन करता है वह मनुष्यों में शिरोमणि होता है। और लता जैसे वृक्ष का आश्रय लेती है उसी प्रकार सम्पदा उसका आश्रय लेती है। आधि, व्याधि विरोध आदि दुःख के कारण हैं। जिस प्रकार जल से अग्नि बुझ जाती है उसी प्रकार ये सब भी धर्म से विनष्ट हो जाते हैं। समस्त शक्ति द्वारा कृत धर्म अन्य जन्म में कल्याण और सम्पत्ति प्राप्ति में धरोहर स्वरूप होते हैं। हे स्वामी, और अधिक मैं आपको क्या बोलूँ! जिस प्रकार बाँस की सीढ़ी द्वारा प्रासाद के शिखर पर चढ़ा जाता है उसी प्रकार धर्म की सहायता से लोकाग्रभाग में स्थित मोक्ष धाम में जाया जाता है। धर्म के द्वारा ही आप विद्याधरों के राजा हुए हैं। इसलिए अब इससे और अधिक प्राप्त करने के लिए धर्म का आश्रय ग्रहण करिए।"

स्वयंबुद्ध मंत्री की यह बात सुनकर अमावस्या की रात्रि के अन्धकार की भाँति अज्ञान रूप अन्धकार की खान रूप, विष रूप, विषममति सम्पन्न संभिन्नमति नामक मंत्री बोले—"शाबास, स्वयंबुद्ध, शाबास! उद्‌गार से आहार की प्रतीति होती है उसी प्रकार तुम्हारे वाक्य द्वारा तुम्हारे मनोभावों को जाना जा सकता है। सर्वदा आनन्द में रहने वाले स्वामी के सुख के लिए तुम्हारे जैसा मन्त्री ही ऐसा बोल सकता है, दूसरा नहीं। किस कठोर स्वभावी उपाध्याय के पास तुमने शिक्षा प्राप्त की है जो इस प्रकार वज्रपात से कठोर वाक्य स्वामी को कहने में तुम सक्षम हो गए हो? सेवक जबकि

अपने-अपने भोग के लिए स्वामी की सेवा करता है तब वह स्वामी को यह कैसे कह सकता है कि आप भोग मत करिए। जो इस जन्म में प्राप्त भोग्य की उपेक्षा कर परलोक के लिए यत्न करे वह करतल स्थित लेह्य पदार्थ का परित्याग कर कोहनी चाटने की भाँति मूर्खता का परिचय देता है। धर्म के द्वारा परलोक में सुफल प्राप्त होता है यह कहना भी भूल है कारण जो परलोक में निवास करते हैं उनका ही जब अभाव है तो परलोक आया कहाँ से? जिस प्रकार गुड़, मैदा और जल से मादक शक्ति उत्पन्न होती है उसी प्रकार पृथ्वी अप तेज और वायु से चेतन शक्ति उत्पन्न होती है। शरीर से अलग और कोई देहधारी नहीं है जो इस लोक का परित्याग कर परलोक जाएगा। अतः निःसंकोच होकर विषय सुख भोग करना उचित है। फिर अपनी आत्मा को ठगना भी तो उचित नहीं है। स्वार्थ नष्ट करना मूर्खता मात्र है। धर्माधर्म की शंका करना भी उचित नहीं है। कारण वह सुख में विघ्न उत्पन्न करता है। फिर धर्माधर्म का गधे के सींग की भाँति कोई अस्तित्व ही नहीं है। पत्थर के एक टुकड़े को स्नान विलेपन कर पुष्प और वस्त्रालंकार से लोग पूजा करते हैं तो किसी दूसरे पत्थर पर बैठकर मूत्र त्याग करते हैं। जरा बताओ उन दोनों प्रस्तर खण्डों ने क्या कोई पुण्य-पाप किया था? यदि जीव मात्र कर्म के कारण जन्म ग्रहण करते हैं और मृत्यु को प्राप्त होते हैं तो फिर जल में बुदबुदे उठते हैं और नष्ट होते हैं वे किस कर्म के कारण होते हैं? जो जब तक इच्छावश प्रयत्न करता है तब तक वह चेतन नाम से अभिहित होता है। विनष्ट होने के बाद चेतन का पुनर्जन्म नहीं होता। यह बात बिल्कुल युक्ति-संगत नहीं है कि जो प्राणी मरता है वह पुनर्जन्म ग्रहण करता है। यह सब तो मात्र कहने की बात है। हमारे प्रभु शिरिष कुसुम तुल्य कोमल शय्या पर शयन करते रहें, रूप लावण्यमयी रमणियों के साथ निःसंकोच रमण करते रहें, अमृत तुल्य भोज्य पदार्थ और पेय का आस्वादन करते रहें ऐसी हमारी अभिलाषा है। जो इनका विरोध करते हैं वे प्रभुद्रोही कहलाते हैं। हे प्रभु, आप कर्पूर, अगरू, कस्तूरी और चन्दनादि का सर्वदा विलेपन करिए ताकि आप सुगन्ध के साक्षात् अवतार लगें। हे राजन्, उद्यान, वाहन, दुर्ग और चित्रशाला आदि जो नेत्रों को आनन्द देते हैं उन्हें बार-बार अवलोकन करिए। हे स्वामी, वीणा, बाँसुरी, मृदंग आदि की ध्वनि और उसके साथ गाए गए मधुर गान आपके कर्ण कुहरों के लिए रसायन रूप बनें। जब तक जीवन है तब तक विषय सुख का सेवन करिए। धर्मकार्य के नाम पर अनावश्यक कष्ट मत सहन कीजिए। संसार में धर्म-अधर्म का कोई फल नहीं है।”

[ क्रमशः

# जैन दर्शन में कर्मवाद [ २ ]

हरिसत्य भट्टाचार्य

[ पूर्वानुवृत्ति ]

**कर्म की स्थिति :**

जीव पदार्थ को लगे हुए कर्म के क्षय होने का नाम निर्जरा है। निर्जरा के अविपाक और सविपाक नामक दो भेद हैं। कर्म पुद्गल के फल देने के लिए तैयार होने से पूर्व ही कठोर तपश्चर्यादि से उसका क्षय कर देने का नाम अविपाक निर्जरा है। यदि तपश्चर्यादि की सहायता से इस कर्म को क्षीण न कर दिया जाय तो वह जीव के साथ मिलकर, विविध फलों का भोग कराता है और उसका निश्चित समय पूरा होने पर जीव का त्याग कर देता है। इसका नाम सविपाक निर्जरा है।

जिस संसारी जीव को अविपाक निर्जरा नहीं, किन्तु सविपाक निर्जरा भुगतनी पड़ती है उसके साथ कौन-सा कर्म कितने समय रहता है, इसका माप भी जैन शास्त्रों ने निकाला है। आचार्य इसे "स्थितिबन्ध" अर्थात् कर्म का स्थितिकाल कहते हैं। स्थिति दो प्रकार की है—(१) परा स्थिति (maximum duration) और (२) अपरा स्थिति (minimum duration)। आठ प्रकार के कर्मों का परा स्थितिकाल और अपरा स्थितिकाल जैनागम के अनुसार नीचे उद्धृत किया जाता है :

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय और अन्तराय कर्म की परा स्थिति—उत्कृष्ट स्थिति ( त्रिंशत् ) ३० कोटाकोटी सागरोपम है।

मोहनीय कर्म की परा स्थिति ( सप्तति ) ७० कोटाकोटी सागरोपम है।

नाम तथा गोत्र कर्म की परा स्थिति ( विंशति ) २० कोटाकोटी सागरोपम है।

आयुष कर्म की परा स्थिति ( त्रयस्त्रिंशत ) ३३ सागरोपम है।

एक योजन व्यास ( Diameter ) वाला और एक योजन गहरा कुंआ खोदा जाय। उसका घेरा लगभग ३$\frac{1}{6}$ योजन होगा। इस कुंवे में उत्कृष्ट भूमि में उत्पन्न, सात दिन के भेड़ के बालों के छोटे से छोटे अंश ठूँस-ठूँस कर भरे हों, और सौ-सौ बरस बाद उस कुँए से एक-एक बाल निकाला जाय, और इस प्रकार एक-एक बाल निकालने से जितने समय में कुँआ खाली होगा

वह एक 'व्यवहारपल्य' कहलाएगा। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि ४१३०५२६३०३०८२०३१७७७४९५१२१९२००००००००००००००००००००० वर्ष का एक व्यवहारपल्य होता है। असंख्य व्यवहारपल्य का एक 'उद्धारपल्य' और असंख्य उद्धारपल्य का एक 'अद्धापल्य' होता है। १० कोटाकोटि अद्धापल्य का एक सागरोपम होता है।

यह उत्कृष्ट स्थिति का वर्णन हुआ। अब अपरा अर्थात् जघन्य स्थिति लीजिए :

वेदनीय कर्म की अपरा स्थिति १२ मुहूर्त है।

नाम और गोत्र कर्म की अपरा स्थिति ८ मुहूर्त है।

शेष कर्मों की अपरा स्थिति १ अन्तर्मुहूर्त है।

एक आकाश प्रदेश में से पासवाले ही दूसरे आकाश प्रदेश में मन्द गति से जाने में एक परमाणु को जितना समय लगता है उसका नाम समय है। असंख्य समय की एक आवली अर्थात् निमेषकाल होता है। अन्तर्मुहूर्त के दो प्रकार हैं—एक जघन्य और दूसरा उत्कृष्ट। एक आवली+एक समय=एक जघन्य अन्तर्मुहूर्त।[१९] एक मुहूर्त की ४८ मिनट होती हैं। १मुहूर्त—१समय=(एक समय कम करने से) एक उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त। जैन शास्त्र में मुहूर्त तथा अन्तर्मुहूर्त का दो अर्थों में वर्णन है।

**कर्म का अनुभाग :**

कर्म के आस्रव से जीव को बन्ध होता है। फल की तीव्रता या मन्दता के हिसाब से कर्मबन्ध भी तीव्र और मन्द गिना जा सकता है। कर्म के अनुभाग-बन्ध के साथ फल की तीव्रता और मन्दता का अत्यन्त निकट सम्बन्ध है। अनुभाग बन्ध का अर्थ फल देने की शक्ति भी हो सकता है। अनुभाग बन्ध को कभी-कभी अनुभव [रस] भी कहा जाता है।

**कर्म का प्रदेश बन्ध :**

आकाश का जो छोटे से छोटा अंश एक परमाणु से व्याप्त रहता है उसे प्रदेश कहते हैं। जैनाचार्य कहते हैं कि लोकाकाश के ऐसे एक प्रदेश में एक साथ एक पुद्‌गल परमाणु, एक धर्म द्रव्य का प्रदेश, एक अधर्म द्रव्य का प्रदेश, काल का एक छोटे से छोटा अणु और जीव प्रदेश रह सकता है। कर्म पुद्‌गल

---

[१९] ९ समय से अधिक काल जघन्य अन्तर्मुहूर्त और ४८ मिनट से एक समय कम जितना काल उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त समझना। और पूरी ४८ मिनट का एक मुहूर्त होता है।

और जीव-द्रव्य इस प्रकार सम्मिश्रित रहते हैं। अनादिकाल से जीव बद्धकर्म हैं। यह जिन सिद्धान्त है। स्पष्ट शब्दों में कहें तो कर्म पुद्गल जीव द्रव्य के के साथ जीव के हर एक प्रदेश में संमिश्रित होकर उसे (जीव को) बद्ध अवस्था में रखता है; जीव के विशुद्ध ज्ञानदर्शनादि निर्मल गुणों को ढक देता है। यही कारण है कि जीव अनादिकाल से दुःख-मोहमय इस संसार में परिभ्रमण करता है। इसी का नाम प्रदेशबन्ध है।

चार प्रकार के बन्ध होने से, कर्म भी चार प्रकार कहे गये हैं। अब आठ प्रकार के कर्म के आस्रव-कारण और कर्म के विपाक के बारे में विचार करना चाहिए।

**कर्म के आस्रव-कारण :**

ऊपर कहा गया है कि जीव के विभाव के कारण जीव में कर्म का आस्रव होता है—कर्म का आगमन होता है। (कर्म के आस्रव के पश्चात् जो आस्रवित कर्म जीव-प्रदेश के एक क्षेत्र में अवगाहना करता है—एकत्र रूपेण रहता है उसे बन्ध अथवा कर्म बन्ध कहा जाता है।) किस प्रकार के विभाव से जीव में किस प्रकार का आस्रव होता है, यह बात यहाँ संक्षेप में कह देता हूँ।

जैन दार्शनिक कहते हैं कि प्रदोष, निण्हव, मात्सर्य, अन्तराय, आसादना (आशातना) और उपघात, ये ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय कर्म के आस्रव में कारणभूत हैं। शंका-समाधान के पश्चात् भी शास्त्र में अश्रद्धा रहने का नाम प्रदोष है। ज्ञान के गोपन को निण्हव कहते हैं। हिंसा, द्वेष या ईर्ष्या के कारण; ज्ञान देने में संकोच करना मात्सर्य कहलाता है। ज्ञानोन्नति के मार्ग में विघ्न डालने का नाम अन्तराय है। कर्म से या वाक्य से अन्य प्रदर्शित सन्मार्ग का अपलाप करना आसादना है। सत्य को सत्यरूप जानते हुए भी अतत्त्वरूप से उसकी स्थापना करना उपघात कहलाता है। जो जीव उक्त प्रदोषादि दोषों से दूषित होता है उसके विषय में जैनाचार्य कहते हैं कि उस जीव में ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय कर्म का आस्रव होता है। परिणामतः उस जीव के ज्ञान और दर्शन ढके हुये रहते हैं। इसी प्रकार दुःख, शोक, आक्रन्द, वध, ताप और परिवेदना ये पूर्वोक्त अशातावेदनीय कर्म के आस्रव में निमित्त कारण हैं। दुःख का अर्थ कष्ट, शोक का अर्थ प्रिय-वियोग का क्लेश और अनुशोचना या अनुताप का अर्थ संताप है। आँख से आँसू निकालने को आक्रन्द कहते हैं। प्राणहिंसा का नाम वध है। जिससे उसके हृदय में दया उत्पन्न हो जाए ऐसा आक्रन्द करना या शोक प्रकट करना परिवेदना है। दुःखादि छः प्रकार के विभाव का अनुभाव अपने में जैसा अनुभव

करता है वैसा ही अन्यों को भी अनुभव करावे अथवा स्वयं भी अनुभव करे और अन्यों को भी अनुभव करावे। इस प्रकार दुःखादि ६ विभाव अठारह भेदों में परिणमित होते हैं। जैनाचार्य कहते हैं कि इन १८ प्रकार के विभाव के कारण अशातावेदनीय कर्म का आस्रव होता है। भूतानुकंपा, व्रतानुकंपा, दान, सरागसंयम, संयमासंयम, अकाम निर्जरा, बालतप, योग, क्षान्ति और शौच, ये दस शातावेदनीय कर्म के आस्रव-कारण हैं; जो सुख पूर्वक वेदा जा सके ऐसे कर्म का इससे आस्रव होता है। सर्व प्राणियों के प्रति करुणा होने का नाम भूतानुकंपा है। व्रतधारी साधुओं के प्रति अनुकंपा होना व्रतानुकम्पा है। रागमिश्रित संयम का नाम सराग संयम है। व्रत का पालन करते हुए जो कुछ कषायों का नियमन होता है वह संयमासंयम है। अविचलित रूप से कर्म के निर्दिष्ट फलों को भोग देने का नाम अकामनिर्जरा है। सम्यग्ज्ञान के साथ जिसका जरा भी सम्बन्ध न हो वह बालतप कहलाता है। चित्तवृत्ति के निरोध को योग कहते हैं। अपराधी को क्षमा करना क्षान्ति है। पवित्रता—शुचिता का नाम शौच है। अवर्णवाद, दर्शन मोहनीय का आस्रव कारण है। सर्वज्ञ भगवान की, विशुद्ध आगम की, संघ की, सत्य धर्म की और देव की निंदा को अवर्णवाद कहते हैं। इस अवर्णवाद से जीव में दर्शन मोहनीय कर्म प्रविष्ट होता है।

कषाय और नो कषाय की प्रकृति तथा भेद ऊपर कहे जा चुके हैं। जैनाचार्य कहते हैं कि कषाय और नो कषाय के उदय से जीव में जो तीव्र विभाव उत्पन्न होता है उससे जीव चारित्र मोहनीय कर्म बाँधता है। बहुत अधिक परिग्रह के कारण जीव नरक की आयु बाँधता है—नरकायुःकर्म का आस्रव होता है। सांसारिक व्यापारों में लिप्त रहने को आरम्भ और विषय तृष्णा के कारण विषयों के भोग को परिग्रह कहते हैं। इन विषयों में तल्लीन होकर जो जीव अहिंसादि को भूल जाता है वह नरकायु बाँधता है। माया अर्थात् ठगबाजी तिर्यंच आयुःकर्म में कारणभूत है। अल्पारम्भ और अल्प परिग्रह से जीव मनुष्यायुः बाँधता है। सर्व प्रकार के आयुःकर्म के आस्रव में अशील और अव्रत मुख्य हैं। सरागसंयम, संयमासंयम, अकाम निर्जरा और बालतप देव-आयुःकर्म के आस्रव में कारणभूत हैं। सम्यक्त्वी अर्थात् सम्यग्दर्शी भी देवता की आयुः उपार्जित करता है।

नाम कर्म में भी शुभ और अशुभ, ये दो भेद हैं; यह बात ऊपर कही जा चुकी है। मनुष्य गति-कर्म, देवगति-कर्म, पंचेन्द्रिय जाति-कर्म, शरीर कर्म, अंगोपांग कर्म, समचतुरस्रसंस्थान कर्म, वज्रऋषभनाराचसंहनन कर्म, शुभ स्पर्श

कर्म, शुभ रस कर्म, शुभ गंध कर्म, शुभ वर्ण कर्म, देवगत्यानुपूर्वी कर्म, मनुष्य-गत्यानुपूर्वी कर्म, अगुरुलघु कर्म, पराघात कर्म, उच्छ्वास कर्म, आताप कर्म, उद्योत कर्म, शुभ विहायोगति कर्म, त्रस कर्म, बादर कर्म, पर्याप्ति कर्म, प्रत्येक शरीर कर्म, स्थिर कर्म, शुभ कर्म, सुभग कर्म, सुस्वर कर्म, आदेय कर्म, यशःकीर्ति कर्म, निर्माण कर्म और तीर्थंकर कर्म ये ३७ प्रकार के कर्म शुभ नाम कर्म हैं, यह भी ऊपर बतलाया जा चुका है।

योगवक्रता और विसंवादन, अशुभनामकर्म के आस्रव कारण है। मन वचन और काया के कुटिल व्यवहार का नाम योगवक्रता है। वितंडा, अश्रद्धा, ईर्ष्या, निन्दावाद, आत्म प्रशंसा, असूया ये सब विसंवाद के अन्तर्गत हैं। योगवक्रता और विसंवाद से विपरीत आचरण शुभ नाम कर्म का आस्रव कराता है।

दूसरे शब्दों में कहा जाए तो मन, वचन और काया का सरल व्यवहार, कलह-त्याग, सम्यग्दर्शन, विनय और गुणानुवाद आदि से जीव में शुभ कर्म का आस्रव होता है। दर्शन-विशुद्धि, विनय संपन्नता, अतिचार रहित शीलव्रत, ज्ञानोपयोग, संवेग, यथाशक्ति त्याग, तप, साधुभक्ति, वैयावृत्य, अरिहंत की भक्ति, आचार्य की भक्ति, बहुश्रुत की भक्ति, प्रवचन की भक्ति, आवश्यक अपरिहाणि, मार्ग प्रभावना और प्रवचनवात्सल्य ; इन १६ प्रकार की शुभ भावनाओं से जीव में तीर्थंकर नामकर्म का आस्रव होता है।

(१) विशुद्ध सम्यग्दर्शन का नाम दर्शनविशुद्धि है। इसके आठ भेद हैं : निःशंकित—विशुद्ध दर्शन में कुछ शंका न करना। निःकांक्षित—धर्म के अतिरिक्त किसी बात की आकांक्षा न करना। निर्विचिकित्सित—धर्म क्रिया में कुछ भी घृणा न रखना। अमूढ़दृष्टि—शुद्ध दर्शन के विषय में लेशमात्र भी कुसंस्कार न रखना। उपबृंहण—सम्यग्दृष्टि कभी दूसरे का दोष नहीं देखता। स्थिरीकरण—सत्य में अविचलित रहना ; यह सम्यग्दृष्टि का एक अंग है। वात्सल्य—सम्यग्दृष्टिवाला सदैव मुक्तिमार्ग के पथिकों की ओर स्नेह, श्रद्धा से देखता है। प्रभावना—मोक्ष मार्ग का प्रचार यह सम्यग्दर्शन का एक लक्षण है। (२) मुक्ति के साधन तथा मुक्ति के मार्ग पर चलने वाले साधुओं की भक्ति को विनय सम्पन्नता कहते हैं। (३) पाँच महाव्रत का परिपालन। (४) आलस्य रहित होकर सम्यग्ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करने का नाम ज्ञानोपयोग है। (५) संसार में दुःख देखना संवेग कहलाता है। (६) शक्ति के अनुसार त्याग करना यथाशक्ति त्याग है। (७) शक्त्यनुसार तप करना यथाशक्ति तप है। (८) साधुओं की सेवा, रक्षा और अभयदान आदि को

साधुभक्ति कहते हैं। (९) धार्मिकों की सेवा वैयावृत्य कहलाती है। (१०) सर्वज्ञ अरिहंत भगवान में अचल श्रद्धा रखने का नाम अर्हद्भक्ति है। (११) साधु संघ के नेता आचार्य, इनकी भक्ति करने को आचार्य-भक्ति कहते हैं। (१२) धर्म का बोध कराने वाले को उपाध्याय और उपाध्याय की भक्ति को उपाध्याय भक्ति अथवा बहुश्रुत भक्ति कहते हैं। (१३) शास्त्र-सम्बन्धी श्रद्धा का नाम प्रवचन भक्ति है। (१४) सामायिक, व्रत, पच्चक्खाण आदि दैनिक धर्मकार्य के अनुष्ठान को आवश्यक अपरिहानि कहते हैं। (१५) प्रभावना का अर्थ है मुक्ति मार्ग का प्रचार करना। (१६) मुक्तिमार्ग में विचरण करने वाले साधुओं के प्रति स्नेहभाव रखने को प्रवचन-वात्सल्य कहते हैं।

परनिंदा, आत्म-प्रशंसा, सद्गुणाच्छादन और असद्गुणोद्भावना से जीव नीच गोत्रकर्म बाँधता है। अन्य की निन्दा को परनिंदा, अपनी प्रशंसा को आत्म-प्रशंसा, अन्यों के सद्गुणों को छुपाना सद्गुणाच्छादन, और नहीं होते हुए गुणों के आरोपण करने को असद्गुणोद्भावन कहते हैं। पर प्रशंसा, आत्मनिन्दा, सद्गुणोद्भावन, असदगुणाच्छादन, नीचैर्वृत्ति और अनुत्सेक, उच्च गोत्रकर्म के आस्रव कारण हैं। अन्यों की प्रशंसा को पर प्रशंसा, अपनी निन्दा को आत्मनिन्दा, अन्यों के सद्गुणों के कथन करने को सद्गुणोद्भावन और अपने गुण को छुपाने को असद्गुणाच्छादन कहते हैं। गुरुजनों की विनय का नाम नीचैर्वृत्ति है और अपने उत्तम कार्यों के गर्व न करने का नाम अनुत्सेक है।

अन्यों को दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य में विघ्न उपस्थित करने से अन्तराय कर्म बँधते हैं। अर्थात् कोई दान करता हो, कोई लाभ उठाता हो, कोई अन्नादि वस्तु का भोग करता हो, कोई चित्रादि वस्तु का उपभोग करता हो, कोई अपनी शक्ति-वीर्य विकसित करता हो, इन कार्यों में विघ्न डाला जावे तो उसे तत्तद्विषयक विघ्न डालना कहेंगे। ऐसे विघ्न डालने से जीव अन्तराय कर्म के आस्रव कारण उत्पन्न करता है।

**कर्म का विपाक :**

कर्म के आस्रव से जीव के ज्ञान-दर्शनादि शुद्ध गुण ढक जाते हैं और जीव विविध प्रकार के संताप तथा दुःख भोगता हुआ संसार में—जन्मजन्मान्तरों में परिभ्रमण करता है। किस कर्म का विपाक किस प्रकार का होगा अथवा किस कर्म का क्या फल मिलेगा यह बात कर्म के लक्षण से ही समझी जा

सकती है। ज्ञानावरणीय कर्म के बन्ध से जीव का शुद्ध ज्ञान आवृत्त होता है। दर्शनावरणीय कर्म जीव की दर्शन-शक्ति को ढँक देता है और जीव के शुद्ध गुण ढँक जाने पर उसे बन्ध, दुःख, शोक, सन्ताप, जन्म, जरा, मृत्यु, क्षोभ आदि संसार की अवर्णनीय ज्वालाओं में से गुजरना पड़ता है। इन ज्वालाओं का किसे अनुभव नहीं है?

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र ये रत्नत्रय हैं। ये ही मोक्षमार्ग के प्रदर्शक हैं। परन्तु कर्म का प्रताप इतना प्रबल है कि जीव अहर्निश संसार की ज्वाला में जलता हुआ भी मोक्षमार्ग में गति नहीं कर सकता। कितनी बार तो मोक्ष मार्ग के यात्री भी कर्म प्राबल्य से पुनः पथभ्रष्ट हो जाते हैं। कर्म बन्धन जितने कठोर हैं, यह मोक्षमार्ग भी उतना ही कठिन है।

जन्म जन्मान्तर के सुकृत के बल से जो भव्य जीव मोक्षमार्ग पर जाने के लिए तैयार होता है उसे क्रमशः १४ भूमिकाएँ पार करनी पड़ती हैं, १४ अवस्थाओं से गुजरना होता है। जैन शास्त्र में इन्हें १४ गुणस्थानक कहा गया है। यहाँ मैं गुणस्थान का वर्णन नहीं करूँगा। कर्म की महिमा इतनी विचित्र है कि वह मोक्षमार्ग की साधना में भी अनेक प्रकार के विघ्न उपस्थित कर देता है। सच्चा धीर, दृढ़चित्त, सहनशील साधक मोक्षमार्ग के इन कण्टकों को—दुःसह कर्मविपाक को—अविचलित रूप से वेदता हुआ उस पार चला जाता है। जैनाचार्य इसे परिषह नाम देते हैं। परिषह का जय किए बिना मोक्ष नहीं मिल सकता।

परिषह २२ प्रकार के हैं—(१) क्षुधा, (२) पिपासा, (३) शीत, (४) उष्ण, (५) दंशमशक, (६) अचेल, (७) अरति, (८) स्त्री, (९) चर्या, (१०) नैषेधिकी, (११) शय्या, (१२) आक्रोश, (१३) वध, (१४) याचना, (१५) अलाभ, (१६) रोग, (१७) तृणस्पर्श, (१८) मल, (१९) सत्कार, (२०) प्रज्ञा, (२१) अज्ञान और (२२) सम्यक्त्व परिषह।

जो साधक मोक्ष को साधना चाहता है उसे इन २२ परिषहों पर विजय प्राप्त करनी चाहिए—इन्हें जीतना चाहिए। उसे भूख, प्यास, सरदी, धूप और मच्छर-डांस का दंश सहना चाहिए। वह चाहे जैसे जीर्ण और तुच्छ वस्त्र से काम चला लेता है, मूल्यवान वस्त्र की अपेक्षा नहीं रखता। कष्ट सहन करने पर भी उसे संयम में अरुचि नहीं होती। स्त्री के रूप, शृंगार या हावभाव से वह विचलित नहीं होता। मार्ग चाहे जितना लम्बा क्यों न हो, सच्चा साधक थक कर या घबड़ाकर पीछे नहीं लौटता। ध्यान के

समय साँप या सिंह का उपसर्ग हो तो भी वह स्थिर रहता है। आसन का परित्याग नहीं करता। वह कठोर भूमि पर सोता है। कोई गाली देता है—कठोर वचन सुनाता है तो वह सहन कर लेता है। कोई ताड़न करता है तो भी समभावपूर्वक सह लेता है। किसी वस्तु की आवश्यकता होने पर उसकी याचना करता है, परन्तु न मिले तो क्लेश नहीं धरता। ज्वर, अतिसार' जैसे रोग हो जाए तो भी उद्विग्न नहीं होता। शरीर में काँटा लग जाए तो दुःख प्रकट नहीं करता। शरीर की मलीनता को सह लेता है। मानापमान को समान समझता है। ज्ञान के गर्व को छोड़ देता है। अपनी अज्ञानता का भी खेद नहीं करता। अखण्ड साधना करते हुए दैवी शक्ति प्राप्त न हो तो भी मोक्ष मार्ग सम्बन्धी श्रद्धा में शंका का प्रवेश नहीं होने देता। इस प्रकार मैंने २२ परिषहों का संक्षिप्त वर्णन किया है। परिषह को जीतने से कठिन मोक्षमार्ग सुलभ बनता है।

मुक्तिमार्ग में कण्टक स्वरूप इन परिषहों का मूल कहाँ है? कर्मबन्ध ही इनका मूल कारण है। ज्ञानावरणीय कर्म में से प्रज्ञा और अज्ञान उत्पन्न होता है। दर्शन मोहनीय कर्म में से अदर्शन परिषह उत्पन्न होता है। अन्तराय कर्म में से अलाभ परिषह का जन्म होता है। अचेलक, अरति, स्त्री, नैषेधिकी, आक्रोश, याचना, सत्कार—पुरस्कार के मूल में चारित्र-मोहनीय कर्म है। शेष परिषह वेदनीय कर्म के विपाक हैं।

कर्म का विपाक किसी को भी नहीं छोड़ता; जीव के पीछे ही पड़ा रहता है। जो साधक अभी १४ वें गुणस्थान पर नहीं पहुँचे उन्हें भिन्न-भिन्न परिषह होने सम्भव हैं। जिन्हें संपराय—कषायों की विशेष संभावना हो वे बादर संपराय माने जाते हैं। जैनाचार्य कहते है कि बादर संपराय साधक को इन २२ परिषहों के होने की संभावना है। जिन साधकों को अति अल्प मात्रा में लोभ-कषाय शेष रह गया है और बाकी सब कषाय नष्ट हो गए हैं वे सूक्ष्म संपराय माने जाते हैं। वे दशम गुणस्थान पर आरूढ़ होते हैं। जिनका चारित्र मोहनीय कर्म उपशान्त हो गया है वे उपशान्त मोह—ग्यारहवें गुणस्थान में होते हैं। जिनका मोह सर्वथा नष्ट हो चुका है वे क्षीण मोह अर्थात् बारहवें गुणस्थान में विराजमान होते हैं। तथापि कर्म का परिबल ऐसा है कि इन सूक्ष्म-संपराय, उपशांत-मोह और क्षीणमोह साधकों को भी अचेल, अरति, स्त्री, नैषेधिकी, आक्रोश, याचना, सत्कार-पुरस्कार और अदर्शन के अतिरिक्त शेष १४ प्रकार के परिषह सहन करने पड़ते हैं। जो पुरुष प्रवर चार प्रकार के घाती कर्म का समूलोच्छेद करके

निर्मल केवल ज्ञान का अधिकारी होता है वह 'जिन' अथवा अर्हत्—सर्वज्ञ अर्हत्—१३ वें गुणस्थान पर पहुँच जाता है। जैन शास्त्र उन्हें "ईश्वर" के नाम से भी पुकारते हैं। ऐसे महापुरुष को भी भूख, प्यास, ठंड, धूप, दंशमशक, चर्या, शैय्या, बध, रोग, तृणस्पर्श और मल ये ११ परिषह व्यक्त रूप से नहीं तो अव्यक्त रूप से ( नाम-मात्र को ) रहते हैं।

केवल सिद्ध के जीव ही परिषह से दूर है। इन्हें कर्म स्पर्श नहीं कर सकता। लोकाकाश की उच्चतम सीमा पर निर्मल सिद्धशिला है। इस शान्तिमय स्थान में रहकर सिद्ध अनन्त चतुष्टय में रमण करते हैं। अनन्त-काल तक रहते हैं। वहाँ न कर्म है न बंध है, न संसार है और न परिषह है।

यहाँ मैंने कर्म का जो जैनागम संमत विवरण दिया है वह शायद कुछ लोगों को नीरस प्रतीत होगा। यह नीरस भले मालूम हो, पर जैनों के कर्म सिद्धान्त के मूल सूत्रों के साथ किसी भी भारतीय दर्शन का मतभेद हो ऐसा प्रतीत नहीं होगा। रागद्वेषादि विभावों के कारण जीव-कर्म में लिप्त होता है। कर्म से ही जीव बँधता है। कर्म ही संसार का मूल है। कर्म ही जीव की प्रकृति और सांसारिक घटनाओं की रचना करता है। कर्म का अभाव नैष्कर्म्य अथवा मुक्ति है। परामुक्ति प्राप्त होने तक जीव के साथ कर्म विपाक लगा ही रहेगा। जैन दर्शन में इन सब तत्त्वों पर खूब विचार किया गया है और भारत के सभी प्राचीन दर्शनों ने उसे स्वीकार किया है। बौद्ध दर्शन ने भी उसकी प्रामाणिकता मानी है। कर्मवाद भारतीय दर्शनों की एक विशिष्टता है। जैन दर्शन में कर्मतत्व की जो विस्तृत आलोचना मिलती है, उससे इतना तो मालूम होता है कि गौतम बुद्ध और भगवान महावीर के पूर्व—शताब्दियों पहिले, भूतकाल के स्मरणातीत युग में, भारतवर्ष में अन्य दर्शनों के समान जैन दर्शन ने भी अच्छी प्रसिद्धि प्राप्त की होगी।

## जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या

जर्नल अव दि अरियेन्टल इन्स्टीट्यूट || मार्च-जून १९८१

इस अंक में है 'Influence of Kalidasa on Vimala Suri and Ravisena' ( M. R. Singh ).

जिनवाणी || अक्टूबर १९८१

आचार्य श्री हस्तीमल जी के प्रवचनों के अतिरिक्त इस अंक में है 'तमिल-वेद तिरुक्कुरल में निहित जैन भावना' ( डा॰ इन्दर राज बेद ) ।

जैन जर्नल || अक्टूबर १९८१

इस अंक में है 'Jaina Concept of Suffering'(Mohanlal Mehta), 'The Daughters of Heaven in the Art of the Nirgranthas' ( P. C. Dasgupta ), 'Jainism' ( B. B. Kundu ), 'The Jainist Soul of Heny David Thoreau' ( Rev. Noel Rettig Jain ).

तीर्थंकर || सितम्बर १९८१

संपादकीय के अतिरिक्त इस अंक में है 'जैन धर्म में सर्वधर्म समन्वय की योग्यता' ( कन्हैयालाल सरावगी ), 'मेरी आबू यात्रा' (राजकुमारी बेगानी ) ।

तुलसी प्रज्ञा || अगस्त-सितम्बर १९८१

आचार्य श्री तुलसी के प्रवचनों के अतिरिक्त इस अंक में है 'बीसवीं सदी का एक जैन सांस्कृतिक नाटक' ( कपूरचन्द जैन ), 'जय पाहुड—प्रश्न व्याकरण नामक एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ' ( अगरचन्द नाहटा ), 'जैन ललित कला' ( साध्वी कान कुमारी ), 'आयारो हिन्दी पद्यानुवाद' ( मुनि मांगीलाल ), 'On Contribution of Jainology to Indian Karma Structures' ( L. C. Jain and C. K. Jain ), 'Jaina Technical Terms' ( Dr. Mohanlal Mehta ).

श्रमण || अक्टूबर १९८१

इस अंक में है 'अपने को पहचानिए' ( महात्मा भगवान दीन ), 'श्वेताम्बर साहित्य में रामकथा' ( डा॰ सागरमल जैन ), 'विमलसूरि के

पउमचरिय का भौगोलिक अध्ययन' ( डा० कामता प्रसाद मिश्र ), 'अललित जैन साहित्य का अनुवाद : कुछ समस्याएँ' ( डा० नन्दलाल जैन ), 'फलवर्द्धिका पार्श्वनाथ तीर्थ : एक ऐतिहासिक दृष्टि' ( शिवप्रसाद ), 'नय और निक्षेप: एक विश्लेषण' ( डा० कृपाशंकर व्यास ) ।

सम्बोधि ।। अप्रैल १९७९-जनवरी १९८०

इस अंक में है 'The Word Mahana in Prakrit' (S.N. Ghosal), 'The Conception of Reality in Jaina Metaphysics as Revealed in the Works of Acarya Kunda Kunda' ( J. C. Sikdar ), 'Jain Temple Inscriptions of Barakara' ( Ram Vallabh Somani ), 'Dharma-Adharma' ( Suzuko Ohira ), 'On Karanas in Jaina Calendar' ( S. D. Sharma and Sajjan Singh Lishk ), 'Haribhadra, Jainism and Yoga' ( Shantilal M. Desai ), 'सर्वतोभद्रिका जिनमूर्त्तियाँ या जिन चौमुखी' (मारूतिनन्दन प्रसाद तिवारी), 'भेद विज्ञान : मुक्ति का द्वार' ( सागरमल जैन ), 'हस्तिमल के विक्रान्त कौरव में तीर्थंकर ऋषभदेव' ( बाबूलाल आंजना ), 'श्रावक कविओनी केटलक अप्रकट गुजराती रचनाओं' ( भोगीलाल ज० सांडेसरा ), 'दानादि प्रकरणम्' ( श्री मत्सूराचार्य विरचितं, संपादक—पं० अमृतलाल मो भोजक, नगीन जी० शाह ) ।

Vol. V No. 7 : Titthayara : November 1981
Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77

*Hewlett's Mixture*
*for*
*Indigestion*

**DADHA & COMPANY**

*and*

**C. J. HEWLETT & SON (India) PVT. LTD.**

22 STRAND ROAD
CALCUTTA-700001